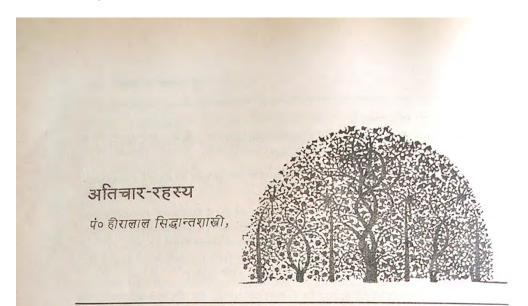
1957G Exceptions to code of conduct

Atichar Rahasya (also in Anekant, 1957)



देव, गुरु, संघ, आत्मा आदि की साक्षी-पूर्वक जो हिसादि पापों का — बुरे कार्यों का — परित्याग किया जाता है, उसे ब्रत कहते हैं। पाँचों पापों का यदि एक देश, आंशिक या स्थूल त्याग किया जाता है, तो उसे अणुवन कहते हैं और यदि सबंदेश त्याग किया जाता है, तो उसे महाब्रत कहते हैं। यतः पाप पाँच होते हैं, अतः उनके त्याग रूप अणुवत और महाब्रत भी पाँच-पाँच ही होते हैं। इस व्यवस्था के अनुसार महाब्रतों के धारक मुनि और अणुवतों के धारक आवक कहलाते हैं। पाँचों ब्रगुवत आवक के शेष वर्तों के, तथा पाँचों महाब्रत मुनियों के शेष ब्रतों के मूल आधार हैं, अतएव उन्हें मूलव्रत या मूलगुण के नाम से भी कहा जाता है। मूलव्रतों या मूलगुणों की रक्षा के लिए जो अन्य व्रतादि धारण किये जाते हैं, उन्हें उत्तर गुण कहा जाता है। इस व्यवस्था के अनुसार मूल में श्रावक के पाँच मूल गुण और सात उत्तर गुण बताये गये हैं। कुछ आचार्यों ने उत्तर गुणों की "शीलव्रत" संज्ञा भी दी है। कालान्तर में श्रावक के मूलगुणों की संख्या पाँच से बढ़कर आठ हो गई, अर्थात् पाँचों पापों के त्याग के साथ मद्य, मांस और मधु इन तीन मकारों के सेवन का त्याग करने को आठ मूलगुण माना जाने लगा। तत्पश्चात् पाँच पापों का स्थान पाँच उदुम्बर फलों ने ले लिया और एक नये प्रकार के आठ मूलगुण माने जाने लगे। इस प्रकार पाँचों अणुवतों की गणना उत्तर गुणों में की जाने लगी और सात के स्थान पर बारह उत्तर गुण या उत्तर बत श्रावकों के माने जाने लगे। किन्त् यह परिवर्तन स्वेताम्बर परमपरा में दिख्योचर नहीं होता।

साधुओं के पाँचों पापों का सर्वथा त्याग नव कोटि से अर्थात् मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से होता है, अतएव उनके ब्रतों में किसी प्रकार के अतिचार के लिए स्थान नहीं रहना है। पर आवकों के प्रथम तो सर्व पापों का सर्वथा त्याग संभव ही नहीं है। दूसरे हर एक व्यक्ति नव कोटि से स्थून भी पापों का त्याग नहीं कर सकता है। तीसरे प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर का बातावरण भी भिन्न-भिन्न प्रकार का रहता है। इन सब बाह्य कारणों से, तथा संज्वलन और नोकषायों के तीव्र उदय से उसके ब्रतों में कुछ न कुछ दोष लगता रहता है। अतएव ब्रत की अपेक्षा रखते हुए भी प्रमावादि, तथा बाह्य परिस्थित-जनित कारणों से गृहीत ब्रतों में दोष लगने का, ब्रत के आंशिक रूप से खण्डित होने का और स्वीकृत ब्रत की मर्यादा के उल्लंघन का नाम ही शास्त्रकारों ने 'अति- चार' रखा है। यथा-

'सापेक्षस्य व्रते हि स्यादितचारोंऽशभंजनम् ।

—सागारधर्मामृत अ० ४ इलो० १८

जब अप्रत्याख्यानावरण कथाय का तीव उदय आता है, तो ब्रत जड़-मूल से ही खण्डित हो जाता है। उसके छिए आचार्यों ने 'अनाचार'' नाम का प्रयोग किया है। यदि किसी ब्रत के लिए १०० अंक मान लिये जावें, तो एक से लेकर ६६ अंक तक का ब्रत-खण्डन अतिचार की सीमा के भीतर आता है। क्योंकि ब्रत-धारक की एक प्रतिशत

अपेक्षा व्रत-धारण में बनी हुई है। यदि वह एक प्रतिशत व्रत-सापेक्षता भी न रहे और व्रत शत-प्रतिशत खण्डित हो जावे, तो उसे अनाचार कहते हैं। अनेक आचार्यों ने इसी दृष्टि को लक्ष्य में रख करके अतिचारों की व्याक्ष्य की है। किन्तु कुछ आचार्यों ने अतिचार और अनाचार इन वो के स्थान पर अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार ऐसे चार विभाग किये हैं। उन्होंने मन के भीतर व्रत-सम्बन्धी शुद्धि की हानि को अतिक्रम, व्रत की रक्षा करने वाली शील-वाड़ के उल्लंघन को व्यतिक्रम, विषयों में प्रवृत्ति करने को अतिचार और विषय-सेवन में अति आसबित को अनाचार कहा है। जैसा कि आठ अमितगति ने कहा है—

क्षति मनः शुद्धिविधेरितकमं व्यक्तिकमं शीलेवृतैर्विलंघनम् । प्रभोऽतिचारं विषयेषुवर्तनं वदन्त्यनाचारिमहातिसक्तताम् ॥ — सामायिक व्लोक

उस व्यवस्था के अनुसार १ से लेकर ३३ अंश तक के ब्रत-भंग को अतिकम, ३४ से लेकर ६६ अंश तक के ब्रत-भंग को व्यक्तिकम, ६७ से लेकर ६६ अंश तक के ब्रत-भंग को अतिचार और शत-प्रतिशत ब्रत-भंग को अना-चार समझना चाहिए।

परन्तु प्रायश्चित्त-शास्त्रों के प्रणेताओं ने उक्त चार के साथ 'आभोग' को बढ़ा करके व्रत-भंग के पाँच विभाग किये हैं। उनके मत से एक बार व्रत खण्डित करके भी पुनः व्रत में वापिस आ जाने का नाम अनाचार है और व्रत खण्डित होने के बाद नि:शङ्क होकर उत्कट अभिलाषा के साथ विषय-सेवन करने का नाम 'आभोग है। किसी-किसी प्रायश्चित्त-शास्त्रकार ने अनाचार के स्थान पर 'छन्नभंग' नाम दिया है।

प्रायश्चित्त-शास्त्रकारों के मत से १ अंश से लेकर २५ अंश तक के व्रत-भंग को अतिकम, २६ से लेकर ५० अंश तक के व्रत-भंग को व्यतिकम, ५१ से लेकर ७५ अंश तक के व्रत-भंग को अतिचार, ७६ से लेकर ६६ अंश तक के व्रत-भंग को अनाचार और शत-प्रतिशत व्रत-भंग को आभोग समझना चाहिए।

श्रावक के जो बारह ब्रत बतलाये गये हैं उनमें से प्रत्येक व्रत के पाँच-पाँच अतिचार बतलाये गये हैं। जैसा कि तत्वार्थाधिगमसूत्र अ० ७ के सू० २४ से सिद्ध है—

"वत-शीलेषु पंच पंच यथाक्रमम्।"

ऐसी दशा में स्वभावत: यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रत्येक व्रत के पाँच-पाँच ही अतिचार क्यों वतलाये गये हैं ? तत्वार्थमूत्र की उपलब्ध समस्त दिगम्बर और श्वेताम्बर टीकाओं के भीतर इस प्रश्न का कोई उत्तर दृष्टिगोचर नहीं होता । जिन-जिन श्रावकाचारों में अतिचारों का निरूपण किया है उनमें, तथा उनकी टीकाओं में भी इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं मिलता है । पर इस प्रश्न के समाधान का संकेत मिलता है प्रायश्चित-विषयक प्रत्यों में —जहाँ पर कि अतिकम, अतिचार, अनाचार और आभोग के रूप में व्रत-भंग के पाँच प्रकार बतलाये गये हैं ।

कुछ वर्ष पूर्व अजमेर के वीस पंथ घड़े के शास्त्र-भंडार से जो 'जीतसार-समुच्चय' नामक ग्रंथ उपलब्ध हुआ है, उसके अन्त में 'हेमनाभ' नाम का एक प्रकरण दिया गया है । इसके भीतर भरत के प्रश्तों का ऋषभदेव के द्वारा उत्तर दिलाया गया है । वहाँ पर प्रस्तुत अतिचारों की चर्चा इस प्रकार से दी गई है—

दृग्-व्रत-गुण-शिक्षाणां पञ्च पञ्चैकशो मलाः । अतिक्रमादिभेदेन पञ्चषघ्टिश्च सन्ततेः ।।

अर्थात् सम्यग्दर्शन, पाँच अर्गुवत, तीन गुणवत और चार शिक्षावत इन तेरह वतों में से प्रत्येक वत के अर्थात् सम्यग्दर्शन, पाँच अर्गुवत, तीन गुणवत और चार शिक्षावत इन तेरह वतों में से प्रत्येक वि के वित्त के मेद से पाँच-पाँच मळ या दोष होते हैं अत्राप्य सर्व मळों की संख्या (१३ × ४ = ६४) पैसेठ हो आती है।



March march and the

इसके आगे सातवें आदि क्लोकों में अतिक्रम-व्यतित्रम आदि पाँचों भेदों का स्वरूप देकर कहा गया है —

त्रयोदश-व्यतेषु स्युमीनस-शुद्धिहानितः ।
त्रयोदशातिवारास्ते विनद्ध्यत्यास्मिन्यतात् । १९०॥
त्रयोदश-व्यतानां स्वप्रतिपक्षाभिलाषिणाम् ।
त्रयोदश-व्यतानां तु क्रियाऽऽलस्यं प्रकुवंतः ।
त्रयोदश-व्यतानां तु क्रियाऽऽलस्यं प्रकुवंतः ।
त्रयोदशातिवाराः स्युस्तत्त्यागानिनर्मलो गृही ॥११॥
त्रयोदशातिवाराः स्युः सुद्धचन्ते योगदण्डनात् ॥१३॥
त्रयोदशातिवाराः स्युः शुद्धचन्ते योगदण्डनात् ॥१३॥
त्रयोदशातिवाराः स्युः सुद्धचन्ते योगदण्डनात् ॥१३॥
त्रयोदशातिवाराः स्युः सुद्धचन्ते योगदण्डनात् ॥१४॥

अर्थात् उक्त तेरह वतों में मानस-शुद्धि की हानिरूप व्यतिक्रम से जो तेरह अतिचार लगते हैं, वे अपनी निन्दा से दूर हो जाते हैं । तेरह ब्रतों के स्व-प्रतिपक्षरूप विषयों की अभिलापा से जो व्यतिक्रम-जिनत तेरह अतिचार लगते हैं, वे मन के निग्नह करने से शुद्ध हो जाते हैं । तेरह ब्रतों के आवरण रूप किया में म्रालस्य करने से तेरह अतिचार लगते हैं, उनके त्याग करने से गृहस्थ निर्मल या शुद्ध हो जाता है । तेरह ब्रतों के अनाचार रूप छन्न भंग को करने से जो तेरह अतिचार लगते हैं, वे मन-वचन-काय रूप तीनों योगों के निग्नह से शुद्ध हो जाते हैं । तेरह ब्रतों के आभोग-जिनत ब्रत-भंग से जो तेरह अतिचार उत्पन्न होते हैं, वे प्रायश्चित्त-विणत नय-मार्ग से शुद्ध होते हैं ।।१०—१४।।

इस विवेचन से सिद्ध है कि प्रत्येक ब्रत के पाँच-पाँच अतिचारों में से एक-एक अतिचार अतिकम-जनित है. एक-एक व्यतिकम-जनित है, एक-एक अतिचार-जनित है, एक-एक अनाचार-जनित है और एक-एक आभोग-जनित है। उक्त सन्दर्भ से दूसरी बात यह भी प्रकट होती है कि प्रत्येक अतिचार की शुद्धि का प्रकार भी भिन्न-भिन्न ही है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि यतः व्रत-भंग के प्रकार पाँच हैं, अतः तज्जनित दोष या अतिचार भी पाँच ही हो सकते हैं।

प्रायश्चित्तचूळिका के टीकाकार ने भी उक्त प्रकार से ही ब्रत-सम्बन्धी दोषों के पाँच-पाँच भेद किये हैं। यथा-

''सर्वेऽपि व्रत-दोषाः पञ्चविष्ठभेदा भवंति । तद्यथा-अतिकमो व्यतिकमोऽतिचारोऽनाचारो आभोग इति । एषा-मर्थदचायमभिषीयते जरव्-गवन्यायेन । यथा-कित्वव् जरव्-गवः महाशस्यसमृद्धि-सम्पन्नं क्षेत्रं सगवलोक्य तस्तीन-समोप-प्रवेदो समवस्थितस्तरप्रति स्पृहां संविध्वत्ते सोऽतिक्रमः । पुर्नाववरोदरान्तरास्यं संप्रवेद्य ग्रासमेकं समाददामीत्यभिनाषका-लुष्यमस्य व्यतिकमः । पुनरिष तद्-वृत्ति-समुल्लंघनमस्यातिचार । पुनरिष क्षेत्रमध्यमधिगम्य ग्राममेकं समाद्य पुनरस्या-पसरणमनाचारः । भूयोऽपि निःद्यंकितः क्षेत्रमध्यं प्रविद्य यथेष्टं संभक्षणं क्षेत्रप्रभुणा प्रचण्डदण्डताडनखलीकारः आनोग-कारः आनोग इति । एवं व्रतादिष्विप योज्यम् ।

—प्रायश्चित्तचूलिका० रलो० १४६ टीका

भावार्थ — प्रत्येक द्रात के दोष अतिक्रम आदि के भेद से पाँच प्रकार के होते हैं। इन पाँचों का अयं एक वृद्धे बैल से ट्रण्टास्त-द्वारा स्पष्ट किया गया है। कोई बूढ़ा बैल घान्य के हरे-भरे किसो खेत को देखकर उसके समीप वैटा हुआ उसे खाने की मन में इच्छा करता है, यह अतिक्रम दोष है। पुनः वह बैठा-बैठा ही वाड़ के किसी छिद्र से भीतर मुख डालकर एक ग्रास धान्य खाने की अभिलाधा करे तो यह ब्यतिक्रम दोष है। अपने स्थान से उठकर और खेत की वाड़ को तोड़कर भीतर पुष्तने का प्रयश्त करना अतिचार नाम का दोष है। पुनः खेत में पहुँचकर एक ग्रास धास या धान्य को खाकर वापिस लौट आवे, तो यह अनाचार नाम का दोष है। किन्तु जब वह निःशंक होकर और खेत के

भीतर घुस यथेच्छ घास खाता है और खेत के स्वामी-द्वारा डण्डों से पीटे जानेपर भी घास खाना नहीं छोड़ता तो आशोग नाम का दोष है । जिस प्रकार ब्रितिकमादि दोषों को बूढ़े बैल के ऊपर घटाया गया है, उसी प्रकार से बतों के

इस विवेचन से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि अतिकमादि पाँच प्रकार के दोषों को ध्यान में रखकर ही प्रत्येक ब्रत के पाँच-पाँच अतिचार बतलाये गये हैं।

श्रावकधर्म का वर्णन करने वाले जितने भी ग्रंथ हैं उनमें से ब्रतों के अतिचारों का वर्णन उपासकदशांग-सूत्र और तत्वार्थसूत्र में ही सर्व प्रथम दृष्टिगोचर होता है। तथा श्रावकाचारों में से सर्वप्रथम रत्नकरण्डश्रावकाचार में अतिचारों का वर्णन पाया जाता है । जब तत्वार्थंसूत्र-वर्णित अतिचारों का उपासकदशांगसूत्र से —जो ब्वेताम्बरीं द्वारा सर्वमान्य है—तुलना करते हैं, तो यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि एक का दूसरे पर प्रभाव ही नहीं है, अपितु एक ने दूसरे के अतिचारों का अपनी भाषा में अनुवाद किया है। यदि दोनों के अतिचारों में कहीं अन्तर है तो केवल भोगोपभोग-परिमाण व्रत के अतिचारों में है । उपासकदशासूत्र में इस व्रत के अतिचार दो प्रकार से बतलाए हैं— भोगतः और कर्मतः । भोग की अपेक्षा वे ही पाँच अतिचार वतलाये गये हैं जो तत्वार्थसूत्र में दिये गये हैं। कर्म की अपेक्षा उपासकदशासूत्र में पन्द्रह अतिचार कहे गये हैं जो कि खर-कर्म के नाम से प्रसिद्ध हैं और पं० आशाधरजी ने सागारधर्मामृत में जिनका उल्लेख किया है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि उपासकदशा में कर्म की अपेक्षा जो पन्द्रह अतिचार बतलाये गये हैं, उन्हें तत्वार्थसूत्रकार ने क्यों नहीं बतलाया ? मेरी समझ से इसका कारण यह प्रतीत होता है कि तत्वार्थसूत्रकार 'व्रत-शीलेषु पंच-पंच यथाकमम्' इस प्रतिज्ञा से बंधे हुए थे, इसलिए उन्होंने ब्रत के पाँच-पाँच ही अतिचार बताये। पर उपासकदशाकार ने इस प्रकार की कोई प्रतिज्ञा अतिचारों के वर्णन करने के पूर्व नहीं की है। अतः वे पाँच से अधिक भी अतिचारों के वर्णन करने के लिए स्वतंत्र रहे हैं।

तत्वार्थसूत्र और रत्नकरण्डश्रावकाचार-वर्णित अतिचारों का जब तुलनात्मक दृष्टि से मिलान करते हैं, तो कुछ व्रतों के अतिचार में एक खास भेद नजर आता है। उनमें से दो स्थल खास तौर से उल्लेखनीय हैं—एक परिव्रह-परिमाण व्रत और दूसरा भोगोपभोगपरिमाणव्रत । तत्वार्थसूत्र में परिग्रहपरिमाणव्रत के जो अतिचार बताये गये हैं, उनसे पाँच की एक निश्चित संख्या का अतिक्रमण होता है। तथा भोगोपभोगव्रत के जो अतिचार बताये गये हैं, वे केवल भोग पर ही घटित होते हैं, उपभोग पर नहीं; जबिक ब्रत के नामानुसार उनका दोनों पर ही घटित होना आवश्यक है। रत्नकरण्ड के कत्ती स्वामी समन्तभद्र जैसे तार्किक व्यक्ति के हृदय में उक्त बात खटकी और इसीलिए उक्त दोनों ही ब्रतों के एक नये ही प्रकार के पाँच-पाँच अतिचारों का निरूपण किया जो कि उपर्युक्त दोनों आपित्तयों से रहित हैं।

यहाँ पर सम्यग्दर्शन, बारह ब्रत और सल्लेखना के अतिचारों का ग्रतिकम, व्यतिकम, अतिचार, अनावार

8		7	₹	8	4
त्रतनाम सम्यग्दर्शन अहिंसाणुत्रत सत्यागुत्रतप अचौर्यागुत्रत ब्रह्मचर्याणुत्रत	अतिकम शंका बन्धन रिवाद विरुद्धराज्यातिकम अन्यविवाहकरण	व्यतिक्रम कांक्षा पीडन रहोऽभ्याख्यान सहशसम्मिश्रण अनेगकीड़ा	अतिचार विचिकित्सा छेदन पैशुन्य होनाधिकविनिमान विटल्व अतिवाहन	अनाचार अन्यवृध्दिप्रशंसा अतिभारारोपण कूटलेखकरण चौरप्रयोग विपुलत्वा अतिभारारोपण	आभोग अन्यदृष्टिसंस्तव अन्त-पानिनरोध न्यासापहार चौरार्थादान इत्वरिकागमन अतिसंग्रह

अतिलोभ

परिग्रहपरिमाणवृत विस्मय

अतिवाहन



दिग्वत	ऊर्घ्वव्यतिक्रम	ग्रधोव्यतिक्रम	तिर्यं ग्वयतिकम	अवधिविस्मरण	क्षोत्रवृद्धि
देशव्रत	रूपानुपात	शब्दानुपात	पुद्गलक्षोप	आनयन	प्रेष्य-प्रयोग
अनर्थदण्डव्रत	कन्दर्प	कौत्कुच्य	मौखयं	असमीक्ष्याधिकरण	अतिप्रसाधन
सामायिक	मनोदु:प्रणिधान	वचोदुःप्रणिघान	कायदुःप्रणिधान	अनादर	विस्मरण
प्रोषधोपवास	अदृष्टमृष्टग्रहण	अ० मृ० विसर्ग	अ० मृ० आस्तरण	अनादर	विस्मरण
भोगोपभोग	विषय-विषतोऽनुप्रेक्षा	अनुस्मृति	अतिलौल्य	अतितृपा	अतिअनुभव
अतिथिसंविभाग	हरित-पिधान	हरित-निधान	मात्सर्य	अनादर	विस्मरण
सल्लेखना भय		मित्रानुराग	जीविताशंसा	मरणाशंसा	निदान

उपर्युक्त वर्गीकरण रत्नकरण्ड-वर्णित अतिचारों को लक्ष्य में रखकर किया गया है; क्योंकि ये अतिचार गर्यसे अधिक युक्ति-संगत प्रतीत होते हैं। तथा भोगोपभोग व्रत के अतिचारों में जो विसंगति ऊपर बताई गई है, वह भी रत्नकरण्ड के अतिचारों में नहीं रहती है।

सारे लेख का सार यह है कि सभी अतिचारों को एक सा न समझना चाहिए, किन्तु प्रत्येक वृत के अति-चारों में व्रतभंग-सम्बन्धी तर-तमता है, उनके फल में और उनकी शुद्धि में भी तर-तमता-गत भेद है. भले ही उन्हें व्यतिचार, मल या दोष जैसे किसी भी सामान्य शब्द से कहा गया हो।

0

देव, गुरु, संघ, आत्मा आदिकी साचीपुर्वक जो हिंसादि पापाका-बुरे कार्याका-परित्याग किया जाता है. उसे बत कहते हैं । पापांका यदि एक देश या आंशिक त्यान किया जाता है, तो उसे अगुव्रत कहते हैं और यदि सर्व देश त्याग किया जाता है, तो उसे महाब्रत कहते हैं। यतः पाप पांच हैं, अतः उत्तके त्यागरूप अगुत्रत और महात्रत भी पांच-पांच ही होते हैं । इस व्यवस्थाके अनुसार महाब्रतीके धारक मुनि और अणुव्रतीके धारक श्रावक कहलाते हैं । पांचों अगुव्रत श्रावकके शेष व्रतोंके, तथा पांचों महावत मुनियोंके शेष व्रतोंके मुल श्राधार हैं, अतएव उन्हें मूलव्रत या मृलगुणके नामसे भी कहा गया है। मूलव्रतों या मूलगुणोंकी रज्ञाके लिए जो दूसरे ब्रतादि थारण किये जाते हैं. उन्हें उत्तरगण कहा जाता है । इस व्यवस्थाके अनुसार मुलमें आवकके पाँच मृलगुख और सात उत्तरगुण बताये गये हैं। उत्तर गुणोंको कुछ आचार्यी-ने 'शीलव्रत' संज्ञा भी दी है। आवक धमके विकासके साथ-साथ मृलगुर्गोकी संख्या पाँचसे बढ़कर आठ हो गई, अर्थात् पाँचों पापोंके त्यागके साथ मदा, मांस और मधु इन तीनोंके सेवनका त्याग करनेकी आठ मृलगुण माना जाने लगा । कालान्तरमें पाँच पापीका स्थान पांच उदुम्बर-फलोंने ले लिया श्रीर एक नये प्रकारके आठ मृल गुण माने जाने लगे। तथा पाँच अगुव्रतोंकी गणना उत्तर गुणोंमें की जाने लगी और सातके स्थान पर वारह उत्तर गुण या उत्तर ब्रत श्रावकोंके माने जाने लगे।

मुनिजनोंके पाँचों पापोंका सर्वथा त्याग नव-कोटिसे अर्थात् मन, वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदनासे होता है, अतएव उनके ब्रतोंमें किसी प्रकारके अतिचारके लिए स्थान नहीं रहता । पर श्रावकोंके प्रथम तो सर्व पापोंका सर्वथा त्याग सम्भव नहीं। दृसरे हरएक व्यक्ति नवकोटिसे पापों-का त्याग भी नहीं कर सकता है। तीसरे प्रत्येक व्यक्तिके चारों श्रोरका वातावरण भी भिन्त-भिन्त

प्रकारका रहता है। इन सब बाह्य कारगोंसे तथा संब्वलन और नो कपायोंके वीज उदयसे उसके व्रतोंमें कुछ न कुछ रोप लगता रहता है । असएव व्रतकी अपेता रखते हुए भी प्रमादादि तथा बाह्य परिस्थिति-जनित कारणोंसे गृहीत व्रतोंमें दोप लगनेका, व्रतके आंशिक रूपसे खस्डित होनेका और गृहीत व्रतकी मर्यादाके उल्लंबनका नाम ही शास्त्रकारोंने छतिचार रखा है । यथा -

सापेज्स्य वते हिस्याद्तिचारोंऽशमञ्जनम्।

. सागारधर्मामृत अ० ४ रलोक १८) जब अप्रत्याख्यानावरण क्यायका तीव उद्य आजाता है, तो व्रत जड़मूलसे ही खरिडत होजाता है। उसके लिए आचार्योने अनावार ऐसे नामका प्रयोग किया है। यदि किसी व्रतके पूरे सौ श्रंक रखे जार्वे, तो एक से लेकर निन्यानवे अहु तकका व्रत-खरडन अतिचारकी सीमाके भीतर आता है। यदि शत-प्रतिशत त्रत खिएडत हो जावे, तो उसे अनाचार कहते हैं। अनेक आचार्योने इसी हिष्ट-को लद्यमें रख करके अतिचारों की व्याख्या की है। किन्तु कुछ आचार्यीने अतिचार और अनाचार इन दोके स्थान पर अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार ऐसे चार विभाग किये हैं। उन्होंने मनके भीतर व्रत-सम्बन्धी शुद्धिकी हानिको अतिकम, व्रत-की रचा करनेवाली शील वाइके उल्लंघनको ज्यति-क्रम, विषयोंमें प्रवृत्ति करनेको अतिचार और विषयसेवनमें अति आसक्तिको अनाचार कहा है।

जैसा कि आ। अभितगतिने कहा है— इति मनःश्रुद्धिविधेरतिकमं व्यतिकमं शीलवृतेर्विजंधनम्। प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदस्यनाचारमिहातिसक्रिताम् ॥

इनके मतानसार १ से लेकर ३३ अ'श तकके व्रत-भंगको व्यतिक्रम, ३४ से लेकर ६६ व्यंश तकके व्रत-भंगको व्यतिक्रम. ६७ से लेकर ६६ अ श तकके व्रत-भंगको व्यतिचार और शत-प्रतिशत व्रत-भंगको श्रनाचार सममना चाहिए।

परन्तु प्रायश्चित्त-शास्त्रोंके प्रयोतात्रोंने उक्त

चारके स्थान पर 'ख्राभोग' को बढ़ा करके पाँच विभाग किये हैं। उनके मतसे एक बार ब्रत खंडित करके भी पुनः व्रतमें वापिस आ जानेका नाम अनाचार है और व्रत-खरिडत होनेके बाद निःशंक होकर उत्कट अभिलापाके साथ विषय सेवन करने-का नाम आभोग है। किसी-किसी प्रायश्चित्तकारने श्रनाचारके स्थान पर छन्न भंग नाम दिया है।

प्रायश्चित्त-शास्त्रकारोंके मतसे १ से लेकर २४ अ'श तकके व्रत-भंगको अतिकम, २४ से लेकर ४० अ श तकके व्रत भंगको व्यतिक्रम, ४१ से लेकर ७४ स्र श तकके व्रत भंगको स्रतिचार, ७६ से लेकर ६६ अंश तकके व्रत-भंगको अनाचार और शत-प्रतिशत व्रत-भंगको आभोग समभना चाहिए।

एक विचारणीय प्रश्न एक विचारियाय अर्प श्रावकके जो बारह ब्रत बतलाये गये हैं, उनमेंसे प्रत्येक ब्रतके पाँच-पाँच श्रातिचार बतलाये गये हैं, जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र अ० ७, सू० २४ से सिद्ध है-"वत-शीलेषु पंच पंच यथाक्रमम्।"

वेसी दशामें स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रत्येक व्रवके पांच-पांच ही श्रविचार क्यों वतलाये गये हैं ? तत्त्वार्थसूत्रकी उपलब्ध समस्त दिगम्बर और श्वेताम्बर टीकाओंके भीतर इस प्रश्तका कोई उत्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। जिन-जिन श्रावकाचारोंमें अतिचारोंका निरूपण किया उनमें तथा उनकी टीकाओं में भी इस प्रश्नका कोई समाधान नहीं मिलता। पर इस प्रश्न-के समाधानका संकेत मिलता है प्रायश्चित्त-विषयक प्रन्थोंमें-जहां पर कि अतिक्रम, व्यतिक्रम, अति-चार, अनाचार और आभोगके रूपमें व्रत-भंगके पांच प्रकार वतलाये गये हैं।

हालमें ही अजमेर-भगडारसे जो 'जीतसार-समुचय' नामक प्रन्थ उपलब्ध हुआ है, उसके अन्त-में 'हेमनाभ' नामका एक प्रकरण दिया गया है। इसके भीतर भरतके प्रश्नोंका भ॰ वृपभदेवके द्वारा उत्तर दिलाया गया है। वहां पर प्रस्तुत अतिचारों-

की चर्चा इस प्रकारसे दी हुई है— द्य-वत-गुख-शिक्ताखां पत्रव पत्र्चेकशो सलाः। श्रतिक्रमादिभेदेन पत्रवपध्यस्य सन्ततेः ॥६॥

२२४]

5

१0. ११.

83

अर्थात् सम्यग्दर्शन, पांच अगुत्रत, तीन गुग्त्रत और चार शिज्ञानत, इन तेरह न्नतांमेंसे शत्वेक व्रतके अतिकम आदिके भेदसे पांच-पांच मल वा अतिचार होते हैं। अतएव सर्व अतिचार (१३% = ६४) पेंसठ हो जाते हैं।

इसके आगे सातवें श्लोकमें अतिक्रम, व्यक्तिम आदि पांचों भेदोंका स्वरूप आदि दिया गया है श्रोर तदनन्तर कहा गया है कि-

त्रयोदश-व्रतेषु स्युर्मानस-शुद्धिहानितः। त्रयोदशातिचारास्ते विनश्यन्त्यात्मनिन्दनात् ॥५०॥ त्रयोदश-व्रतानां स्वप्रतिपन्नाभिलाविणाम्। त्रयोदशातिचारास्ते शुद्धयन्ति स्वान्तनिमहात् ॥११॥ त्रयोदश-वतानां तु क्रियाऽऽलस्यं प्रकुर्वतः। त्रयोदशातिचाराः स्युस्तस्यागान्निर्मलो गृही ॥१२॥ त्रयोदश-व्रतानां तु छुन्ने भंगं वितन्वतः। त्रयोदशातिचाराः स्युः शुद्धयन्ते योगद्गडनात् ॥१३॥ त्रयोदशवतानां तु साभोग-व्रतभंजनात्। त्रयोदशातिचाराः स्युरछन्न' शुद्धयधिकान्नयात् ॥१४॥

अर्थात् उक्त तेरह व्रतोंमें मानस-शुद्धिकी हानि-रूप व्यतिक्रमसे जो तेरह अतिचार लगते हैं, वे अपनी निन्दा करनेसे दूर हो जाते हैं। तेरह ब्रतों-के स्व-प्रतिपत्तरूप विषयोंकी अभिलापासे जो व्यति-क्रम-जनित तेरह अतिचार लगते हैं, वे मनके निम्रह करनेसे शुद्ध हो जाते हैं। तेरह ब्रतोंके आच-रगरूप कियामें आलस्य करनेसे जो तेरह अतिचार उत्पन्न होते हैं, उनके त्यागसे गृहस्थ निर्मल अर्थात् श्रतिचार-जनित दोषसे शुद्ध हो जाता है। तेरह व्रतीके श्रनाचाररूप छन्न भंगको करनेसे जो तेरह अतिचार होते हैं, वे मन, वचन, कायरूप तीनों थोगोंके निमहसे शुद्ध हो जाते हैं। तेरह क्रतोंके श्राभोग-जनित व्रत-भंगसे जो तेरह श्रतिचार उत्पन्न होते हैं, वे प्रायश्चित्त-वर्णित नय-मार्शसे शुद्ध होते ぎ 1180-8811

इस विवेचनसे सिद्ध है कि प्रत्येक व्रतके पांच पांच अतिचारोंमेंसे एक-एक अतिचार अतिकम-जनित है. एक-एक व्यतिक्रम-जनित है, एक-एक अतिचार-जनित है, एक-एक अनाचार-जनित है और एक-एक आभोग-जनित है। उक्त सन्दर्भसे

किरण =]

दूसरी बात यह भी सिद्ध होती है कि प्रत्येक अति-चारकी शुद्धिका प्रकार भी भिन्न-भिन्न है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि यतः ब्रत-भंगके प्रकार पांच लेना चाहिए। हैं, अत: तज्जनित दोष या अतिचार भी पांच ही

हो सकते हैं। प्रायश्चित्तचूलिकाके टीकाकारने भी उक्त प्रकारसे ही बत-सम्बन्धों दोषोंके पांच-पांच भेद किये हैं-सर्वोऽपि ब्रतदोषः पञ्चपिठभेदो भवति । तद्यथा-

अतिक्रमो व्यतिक्रमोऽतिचारोऽनाचारोऽभोग इति। एपामर्थश्चायमभिधीयते जरद्गवन्यायेन । यथा-

कश्चिज्ञरद्गवः महासस्यसमृद्धि-सम्पन्नं चेत्रं समवलोक्य तत्सीमसमीपप्रदेशे समवस्थितस्तत्प्रति स्पृहां संविधत्ते सोऽतिक्रमः । पुनर्विवरोदरान्तरास्यं संप्रवेश्य प्रासमेकं समाददामीत्यभिलापकालुष्यमस्य व्यतिक्रमः । पुनरपि तद्-वृत्तिसमुल्लंघनमस्याति-चारः। पुनरपि चेत्रमध्यमधिगम्य प्रासमेकं समा-दाय पुनरस्यापसरणमनाचारः । भृयोऽपि निःशं-कितः स्रेत्रमध्यं प्रविश्य यथेष्टं संभक्त्णं स्त्रप्रभुणा प्रचएडदएडताडनखलीकारः आभोगकारः आभोग इति । एवं त्रताद्द्विप योज्यम् ।

(श्रायश्चित्त-चृलिका. श्लो० १४६ टीका) - प्रत्येक ब्रवके दोप अविकम, व्यवि-कम, अतिचार, अनाचार और आभोगके भेदसे पांच प्रकारके होते हैं। इन पांचोंका अर्थ एक बूढ़े बैलके हच्टान्त-द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

जैसे कोई वृदा वैल धान्यसे हरे-भरे किसी खेतको देखकर उसके समीप बैठा हुआ ही उसके खानेकी मनमें उच्छा करे, यह अतिकम दोप है। पुन: बैठा बैठा ही बाढ़के किसी छिद्रसे भीतरको मुँह डालकर एक प्राप्त लेनेकी अभिलापा करे, यह व्यतिक्रम दोप है। पुनः उठकर और खेतकी बाढ़को तोड़कर भीतर घुसनेका प्रयत्न करना अतिचार नामका रोप है। पुनः खेतमें पहुँचकर एक प्रास घासको खाकर वापिस लौटना, यह अनाचार नाम-का दोप है। फिर भी निःशंकित होकर खेतके भीतर युसकर यथेच्छ घास खाना और खेतके मालिकद्वारा डंडॉसे प्रवल आघात किये जाने पर भी घासका खाना न छोड़ना आभोग नामका दोष

है। जिस प्रकार अतिक्रमादिको बूढ़े बैलके ऊपर घटाया गया है, इसी प्रकार ब्रतोंके ऊपर भी लगा

इस विवेचनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि अतिकमादि पाँच प्रकारके दोगोंकी अपेज्ञा ही प्रत्येक व्रतके पाँच-पाँच अतिचार वत-लाये गये हैं।

श्रावक-धर्मका प्रतिपादन करनेवाले जितने भी प्रन्य हैं, उनमें से ब्रतोंके श्रातचारोंका वर्णन उपा-सकाध्ययन और तत्त्वार्थसूत्रमें ही सर्वप्रथम दृष्टि-गोचर होता है। तथा श्रावकाचारों मेंसे सर्वप्रथम रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें श्रातचारोंका वर्णन किया गया है। जब इम तत्त्वार्थसूत्र विश्वत अतिचाराँका उपासकाध्ययन सत्रसे जोकि आज एकमात्र श्वेता-म्बरोंके द्वारा ही मान्य हो रहा है-तुलना करते हैं, तो यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि एक-का दूसरे पर प्रभाव ही नहीं है, अपितु एकने दूसरे-के आतचारोंका अपनी भाषामें अनुवाद किया है। यदि दोनोंके अतिचारोंमें कहीं अन्तर है, तो केवल भोगोपभोग-परिमाण्यतके अतिचारों में है। उपास-काध्ययन-सूत्रमें इस व्रतके अतिचार दो प्रकारसे वतलाये हैं-भोगतः और कर्मतः। भोगकी अपेत्ता वे ही पाँच अतिचार बतलाये गये हैं. जोकि तत्त्वार्थ-सत्रमें दिये गये हैं। कर्मकी अपेचा उपासकाध्ययन-में पन्द्रह अतिचार कहे गये हैं, जोकि खरकमें के नामसे प्रसिद्ध हैं, और सागारधर्मामृतके भीतर जिनका उल्लेख किया गया है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि उपासका-व्ययनमें कर्मकी अपेद्मा जो पन्द्रह अतिचार बतलाये गये हैं, उन्हें तत्त्वार्थसूत्र-कारने क्यों नहीं बतलाया मेरी सममसे इसका कारण यह प्रतीत होता है कि तत्त्वार्थसूत्रकार "वत-शीलेषु पंच पंच ययाक इस प्रतिज्ञासे बंधे हुए थे, इसलिए उन्होंने प्रत्येक व्रतके पांच-पांच ही अतिचार वताये। पर उपास-काध्ययन-कारने इस प्रकारकी कोई प्रतिज्ञा अति-चारोंके वर्णनके पूर्व नहीं की है, अतः वे पांचसे अधिक भी अतिचारोंके वर्णन करनेके लिए स्वतंत्र रहे हैं।

तत्त्वार्थसुत्र ऋोर रत्नकरण्डश्रायकाचार-वर्णित अतिचारोंका जब तुलनात्मक दृष्टिसे मिलान करते हैं तो कुछ व्रतोंके अतिचारोंमें एक स्नास भेद नजर आता है। उनमेंसे दो स्थल खास तौरसे उल्लेखनीय हैं-एक परिम्रहपरिमाणवृत और दूसरा भोगोप-भोगपरिमाण्यवत । तत्त्वार्थसूत्रमं परिप्रहपरिमाण-व्रतके जो अतिचार वताये गये हैं, उनसे पाँचकी एक निश्चित सख्याका अतिक्रमण हो जाता है। तथा ओगोपभोगन्नतके जो अतिचार बताये गये हैं, वे केवल भोग पर ही घटित होते हैं, उपभोग पर नहीं; जब कि व्रतके नामानुसार उनका दोनों पर घटित होना आवश्यक है। रत्नकरण्डके कत्ती आ समन्तभद्र जैसे तार्किक व्यक्तिके हृदयमें उक्त बार खटकी और इसीलिए उन्होंने उक्त दोनों ही ब्रतींवे एक नये प्रकारके ही पांच-पांच अतिचारोंका निरू पण किया, जोकि उपर्युक्त दोनों आपित्तरीं से रहित हैं।

यहाँ पर सम्यग्दर्शन, वारह बत और सल्ले खनाके अतिचारोंका अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार अनाचार और आभोग इन पांच प्रकारके दोपोर वर्गीकरण किया जाता है, जिसकी तालिका इ प्रकार है -

DESPIE	8	9	3	8	×
श्रतिचार-क्रम सम्यग्दर्शन ३		व्यक्तिक्रम कांचा	श्रतिचार विचिकित्सा	अनाचार अन्यदृष्टिश्रशंसा	आभोग अन्यदृष्टिसंस्तः
. श्रहिंसाव्रत	छेदन.	वन्धन	पीडन	श्रतिभारारोपग्	श्राहार-वास्य
सत्यागुत्रत-	परिवाद	रहोऽभ्याख्यान	पैशुन्य	कूटलेखकरण	न्यासापहार
. श्रचौर्यागुव्रत	चौरप्रयोग	चौरार्थादान	विलोप	सदशसन्मिश्र	हीनाधिकविनि
. ब्रह्मचर्यागुत्रत	अन्यविवाहकरण	अनंगक्रीड़ा	विदत्व	विपुलतृषा	इत्वरिकागमन
परिप्रहपरि॰	अतिवाहन	श्रातिसंग्रह	विस्मय	त्रतिलोभ	श्रतिभार-वहन
. दिग्ब्रत	ऊर्ध्वव्यतिक्रम	अधोव्यतिक्रम	तिर्यग्व्यतिक्रम	त्तेत्रवृद्धि	अवधिविस्मरा
. देशव्रत	रूपानुपातः :	शब्दानुपात	पुद्गलच्चेप	श्रानयन	प्रेष्यप्रयोग
. श्रनर्थद्ग्डब्र	त कन्दर्प	कोत्कुच्य	मौखर्य	श्रसमीद्याधिक०	अतिप्रसाधन
. सामायिक	मनोदुःप्रशिधान	वचोदुःप्रशिधान	कायदुःप्रशिधान	श्रनादर	अस्मरण
. त्रोपधोपवास		विसर्ग	आस्तरण	अनादर	अस्मरण
भोगोपभोग- परिमाण	विषयविषतोऽ- नुषेत्रा	श्रनुस्मृति	श्चितिलील्य.	अतितृषा	श्रति-श्रनुभव
. श्रातिथिसंवि०		हरित-निधान	मात्सर्य	श्रनादर .	अस्मरण
सल्लेखना	जीविताशंसा	मरणाशंसा	भय	मित्रानुराग	निदान

व्यनेकान्त

उक्त वर्गीकरण रत्नका्ण्ड-वर्णित अतिचारोंको सामने रखकर किया गया है, क्योंकि वे अतिचार मुक्ते सबसे अधिक युक्तिसंगत प्रतीत हुए हैं। अन्तमें पाठकोंसे और खास तौर पर विद्वानोंसे यह नम्र निवेदन कर देना आवश्यक समक्तता हूँ कि वे मेरे द्वारा किये गये वर्गीकरणको अन्तिम रूपसे

निश्चित किया हुआ न मान लेवें। किन्तु इस वर्ग करण पर खूब विचार करें और जिन्हें जो भी नर विचार उत्पन्न हो, वे उसे अनेकान्तमें प्रकाशना भेजें, या व्यक्तिगत रूपसे मुक्ते लिखें । उना विचारों श्रीर सुकाश्रांका सादर स्वागत कि जायगा।